International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 1; Issue 6; June 2016; Page No. 46-48

विवेकानंद पर प्रस्थानत्रयी का प्रभाव

डॉ0 अखिल सिंह

सहायक महाप्रबंधक, प्रशासन, विक्रांत सैफ गार्ड इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नौएडा, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

प्रत्येक युग पुरुष के ऊपर उस देश के साहित्य की छाप कहीं न कहीं जरूर दिखाई देती है। इसी प्रकार स्वामी विवेकानंद जी के चरित्र निर्माण में जहॉ एक ओर स्वामी रामकृष्ण परमहंस व माँ शारदा की प्रेरणा रही, वहीं दूसरी ओर भारतीय अध्यात्म की मूल भावना 'प्रस्थानत्रयी' ने विवेकानंद की सोच को एक नया कलेवर प्रदान किया।

प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत स्वामी जी ने 'उपनिषदों' के गहन अध्ययन के द्वारा जीव, आत्मा व परमात्मा को समझा, 'गीता' के द्वारा उसके कर्मयोग को आत्मसात किया एवं 'ब्रह्मसूत्र' के द्वारा माया एवं ईश्वर के स्वरूप को समझने का सफल प्रयास किया जो कि स्वामी जी के अद्वैत वेदान्त जिसे व्यावहारिक वेदान्त की संज्ञा देते हैं, में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

उपनिषदों का प्रभाव

स्वामी विवेकानंद प्रस्थानत्रयी के प्रथम अंग उपनिषदों से अत्यधिक प्रभावित थे। उनके द्वारा दिए गए व्याख्यानों एवं लिखी गई रचनाओं के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उनकी उपनिषदों के प्रति कितनी अधिक दृढ़ आस्था थी। उपनिषदों की संख्या में मतभेद है लेकिन स्वामी जी ईशोपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद् तथा कठोपनिषद् से विशेष प्रभावित थे। इन्हीं उपनिषदों का सर्वाधिक प्रयोग स्वामी जी के द्वारा उदाहरण देते समय किया गया है।

स्वामी विवेकानंद जी शुद्ध रूप से अद्वैतवादी होने के कारण से जगत् में एकमात्र 'ब्रह्म' की ही सत्यता मानते हैं। स्वामी जी कहते हैं कि 'ब्रह्म' ही एक मात्र सत् है।[1] यहीं बात बृहद् आरण्यक उपनिषद् में भी कही गयी है। 'ब्रह्म' का स्वरूप 'सत्' होने के कारण ही इसकी सत्ता अनन्त है और जिसकी सत्ता अनन्त होती है उसे किसी सीमित दायरे में नहीं खोजा जा सकता। यदि मानव को ब्रह्म की खोज करनी है तो वह स्वयं की अंर्तआत्मा में ही कर सकता है।

स्वामी जी अद्वैतवादी होने के कारण आत्मा और परमात्मा को अलग–अलग न मानकर एक ही मानते हैं ''अयं आत्मा ब्रह्मः'' अपनी इसी बात को स्पष्ट करने के लिए वह कहते हैं कि एक पेड़ पर दो सुंदर पक्षी बैठे है, उनमें से एक शांत, स्थिर एवं भव्य है। दूसरा मीठे–कड़वे फल चख रहा है और सुख–दुःख भोग रहा है।[2]

स्वामी विवेकानंद द्वारा दिया गया उपरोक्त रूपक मुण्डकोपनिषद् से लिया गया है। इस रूपक के माध्यम से स्वामी जी समझाते हैं कि जहां ऊपर वाला पक्षी ब्रह्म है, वही दूसरा पक्षी जीवात्मा है जोकि जगत् के सुख–दुख को भोगता रहता है। जीवात्मा को जब ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है तब वह सांसारिक फल भोग को छोड़कर ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए अग्रसर हो जाता है।

स्वामी जी की 'पुर्नजन्म' में प्रबल आस्था थी उनकी यह आस्था उपनिषदों की ही देन है। पुर्नजन्म के बारे में स्वामी जी का विचार था कि पुर्नजन्म का सिद्धान्त हमारे सामान्य विश्वासों के असंगत स्वर का समाधान करता है। अनैतिक बनाने के बजाए यह मत हमें न्याय का भाव प्रदान करता है।[3] वह कहते हैं कि यदि किसी आदमी के कार्य अच्छे हैं तो वह अवश्य ही उच्च कोटि का जन्म लेगा और यही बात विपरीत क्रम से भी होगी।[4]

स्वामी जी का पुर्नजन्म सम्बंधी विचार वृहदारण्यकोपनिषद् से प्रभावित है जिसके अनुसार मरने के पश्चात् मनुष्य का शरीर पंच तत्वों में विलीन हो जाता है, तथा शेष रह जाता है शुद्ध 'आत्मतत्व' एवं उसके द्वारा किये गये अच्छे बुरे कर्मों के फल यही कर्म–फल उसके दूसरे जन्म का निर्धारण करते हैं।

स्वामी विवेकानंद उपनिषदों के द्वारा अपने जीवन पर पड़े हुए प्रभावों के बारे में स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि उपनिषदों का प्रत्येक पृष्ठ मुझे शक्ति देता है। यह विषय विशेष रूप से स्मरण रखने योग्य है, समस्त जीवन में मैंने यही महाशिक्षा प्राप्त की है– उपनिषद् कहते हैं कि हे मानव, तेजस्वी बनो, वीर्यमान बनो, दुर्बलता को त्यागो।[5]

स्वामी जी उपनिषदों के बारे में आगे कहते हैं कि उपनिषद् शक्ति की विशाल खान है। उपनिषदों में ऐसी प्रचुर शक्ति विद्यमान है कि वे समस्त संसार को तेजस्वी बना सकते हैं। उनके द्वारा समस्त संसार पुर्नजीवित, सशक्त और वीर्य सम्पन्न हो सकता है। समस्त जातियों को, सकल मतों को, भिन्न–भिन्न सम्प्रदाय के दुर्बल, दुःखी पददलित लोगों को स्वयं अपने पैरों पर खड़ें होकर मुक्त होने के लिए वे उच्च स्वर में उद्घोष कर रहे हैं। मुक्ति अथवा स्वाधीनता – दैहिक स्वाधीनता, मानसिक स्वाधीनता, आध्यात्मिक स्वाधीनता यहीं उपनिषदों के मूल मंत्र हैं।[6]

स्वामी विवेवकानंद उपनिषदों के ज्ञान को सभी मनुष्य के लिए आवश्यक मानते थे। वह कहते हैं कि उपनिषदों का ज्ञान सबके लिए और जीवन की सभी अवस्थाओं के लिए उपयोगी है। ये केवल अरण्य में अथवा गिरिगुहाओं में आबद्ध नहीं रहेंगे, वकीलों और न्यायधीशों में, प्रार्थना–मन्दिरों में, दरिद्रों की कुटियों में, मछुआरों के घरों में, छात्रों के अध्ययन स्थानों में – सर्वत्र ही इन तत्वों की चर्चा होगी और ये काम में लाये जायेंगे।[7]

गीता का प्रभाव

स्वामी विवेकानंद के दर्शन में सर्वत्र ही गीता का प्रभाव दिखाई देता है। स्वामी जी गीता से कितने अधिक प्रभावित थे, इसका अनुमान उनके द्वारा शिकागों के विश्व धर्म सम्मेलन में दिए गए उद्बोधन से सहज ही लगाया जा सकता है। वह सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि भाइयों, मैं आप लोगों को एक स्त्रोत की कुछ पंक्तियाँ सुनाता हूँ, जिसकी आवृत्ति मैं अपने बचपन से करता हूँ और जिसकी आवृत्ति प्रतिदिन लाखों मनुष्य किया करते हैं:-[8]

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम् ।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।। शिवमहिम्न श्लोक सं.7

अर्थात् जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न–भिन्न स्त्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती है, उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न–भिन्न रूचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े–मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जाने वाले लोग अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।[9]

यहां गीता का प्रसंग ''वासांसि जीर्णामि यथा विद्यय आदि की चर्चा अपेक्षित है।

स्वामी जी सम्मेलन में ही आगे कहते है यह सभा जो अभी तक आयोजित सर्वश्रेष्ठ पवित्र सम्मेलनों में से एक है स्वतः ही गीता के इस अद्‌भुत उपदेश का प्रतिपादन एवं जगत् के प्रति उसकी घोषणा हैः–

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।। गीता 4.11

अर्थात् जो कोई मेरी ओर आता है– चाहे किसी प्रकार से हो – मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग भिन्न–भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए अंत में मेरी ही ओर आते हैं।[10]

स्वामी जी का सम्मेलन में शिवमहिम्नस्तोत्रम् एवं गीता के पद सुनाने का उद्‌देश्य उपस्थित समुदाय को हिन्दु धर्म के सर्व धर्म समभाव के सिद्धांत से अवगत करना ही था।

स्वामी विवेकानंद ने विश्व समुदाय एवं उसके धर्म गुरूओं के सम्मुख आत्मा की अविनाशिता के नियम को, गीता के माध्यम से ही समझाते हुए कहा कि–

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयतिमारूतः। गीता 2.23

अर्थात् आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि दग्ध नहीं कर सकती, जल भिगो नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकती।[11]

गीता का स्वामी जी के दर्शन एवं चरित्र पर इतना अधिक प्रभाव था कि वह उसे अपने सम्बोधन के साथ–साथ लेखन के माध्यम से भी व्यक्त किया करते थे। स्वामी विवेकानंद जी ने भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्‌गीता नामक पुस्तक के माध्यम से दैनिक व्यवहार में गीता की सार्थकता को सि(करते हुए लिखा भी है कि गीता में यदि कोई ऐसी बात है जिससे मैं विशेष रूप से प्रभावित हूँ तो वह ये दो श्लोक हैंः–[12]

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वनिश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।। गीता 13.27

एवम्

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थिमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।। गीता 13.28

अर्थात् विनाश होने वाले सब भूतों में जो लोग अविनाशी परमात्मा को स्थित देखते हैं यथार्थ में उन्हीं का देखना सार्थक है, क्योंकि ईश्वर को सर्वत्र समान भाव से देखकर वे आत्मा के द्वारा आत्मा की हिंसा नहीं करते, इसलिए वे परमगति को प्राप्त होते हैं।[13]

स्वामी विवेकानंद जी ने आजीवन लोगों को गीता से ही प्रभावित होकर के निष्काम कर्मयोग की शिक्षा दी और मद्रास में 'भारतीय जीवन में वेदान्त का प्रभाव' विषय पर दिये गए अपने व्याख्यान में यह श्लोक दोहराया है कि–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्माणि।। गीता 2.47

अर्थात् कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, फल में नहीं, तुम इस भाव से कर्म मत करो, जिससे तुम्हें फल–भोग करना पड़े। तुम्हारी प्रवृत्ति कर्म त्याग करने की ओर न हो।[14]

स्वामी विवेकानंद जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन नैतिकता के माध्यम से अहिंसा के प्रचार–प्रसार में समर्पित कर रखा था। स्वामी जी का कहना था कि सब नैतिक तत्वों का सार दूसरों की हित साधना ही है। इसलिए हमें सदैव दूसरों का हित करना चाहिए। स्वामी जी का यह विचार गीता से कितना प्रभावित है, वह इस श्लोक में स्पष्ट हो सकता है–

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।। गीता 6.29

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थिमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।। गीता 13.28

अर्थात् जो आत्मा अपनी आत्मा को सब भूतों में स्थित देखता है और आत्मा में सब भूतों को देखता है, वह इस तरह ईश्वर को सर्वत्र समभाव से अवस्थित देखता हुआ आत्मा द्वारा आत्मा की हिंसा नहीं करता।[15]

स्वामी विवेकानंद की परमात्मा में अटूट एवं दृढ़ आस्था थी जो कि गीता की ही देन थी। खेतड़ी के राजा अजित सिंह बहादुर के पत्र का उत्तर देते हुए वह सर्वप्रथम लिखते है–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।गीता 4.7

अर्थात् जब जब धर्म की हानि होती है और अधर्म संसार में बढ़ता है, तब तब मैं पुनः धर्म की स्थापना के लिए अवतीर्ण होता हूँ।[16]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि स्वामी जी की स्पष्ट मान्यता थी कि सभी जीवधारियों में जो आत्मा विद्यमान है वह मूल रूप से परमात्मा ही है।

ब्रह्मसूत्र का प्रभाव

स्वामी विवेकानंद का दर्शन ब्रह्मसूत्रों से भी अत्यधिक प्रभावित हैं। स्वामी विवेकानंद अद्वैत वेदान्ती होने के कारण से ब्रह्म की निरपेक्ष, निर्विशेष एवं निर्गुण सत्ता को स्वीकार करते हैं।

स्वामी विवेकानंद ने भी आचार्य शंकर की तरह एक मात्र ब्रह्म को ही सत् माना है। स्वामी जी के अनुसार ब्रह्म एक है। वह स्वयंभू है। उसका कोई कारण नहीं है। वह अनिर्वचनीय व अवर्णनीय है।[17]

स्वामी विवेकानंद जगत् की असत्यता को समझाते हुए कहते हैं कि एक समय में एक से अधिक वस्तुओं का अस्तित्व नहीं रह सकता।[18] यदि ब्रह्म सगुण है, यदि ब्रह्म अनेक सद्‌गुणों से उपेत है और यदि ब्रह्म संसार के समस्त सद्‌गुणों की विधि है तो सापेक्षता के सिद्धान्त के अनुसार क्या बिना दोषों के गुणों का अस्तित्व संभव है?[19]

स्वामी विवेकानंद द्वैतवादियों से आगे और प्रश्न करते हुए कहते हैं कि यदि ईश्वर ही सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता और हर्ता हैं तो द्वैतवाद के अनुयायी जगत् के वैषम्य के विषय में क्या समाधान देंगे?[20] एक मनुष्य सुखी है तो दूसरा दुःखी, एक धनी है तो दूसरा निर्धन, एक का जीवन दूसरे की मृत्यु पर निर्भर करता है, यह प्रतिद्वंद्विता, निष्ठुरता, घोर अत्याचार और दिन–रात की आह – जिसे सुनकर कलेजा फटा जाता है इसका सगुण ईश्वरवादी क्या समाधान प्रस्तुत करेंगे? यदि यही ईश्वर की सृष्टि है तो वह ईश्वर निष्ठुर से भी बढ़कर है।[21] स्वामी जी के इन प्रश्नों का उत्तर अद्वैत वादियों के अतिरिक्त किसी के भी पास नहीं है।

स्वामी विवेकानंद के विचारों में ईश्वर उतना ही सत्य है, जितना विश्व की अन्य कोई वस्तु।[22] जिससे विश्व का जन्म, स्थिति और प्रलय होता हैः वही ईश्वर है।[23] वह अनन्त, शुद्ध, नित्य, मुक्त, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, परम कारूणिक और गुरूओं का भी गुरू है, और सर्वोपरि, वह ईश्वर अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूप है।[24]

स्वामी विवेकानंद ने माया को 'सद्‌सद्‌निर्वचनीय' कहा है। स्वामी जी के अनुसार माया के विषय में न तो यह कहा जा सकता है कि उसका अस्तित्व नहीं है, क्योंकि उसी ने समस्त भेद उत्पन्न किए हैं, न ही इसके विषय में यह कहा जा सकता है कि उसका अस्तित्व है क्योंकि वह सदैव दूसरे पर आश्रित रहती है।[25] यद्यपि परमार्थतः उसका अस्तित्व नहीं है फिर भी व्यवहार में उसे

अनिवर्चनीय कह सकते हैं।[26] इसको न एक कहकर निर्दिष्ट कर सकते हैं और न अनेक कहकर।[27]

स्वामी विवेकानंद ने भी आचार्य शंकर के समान ही विषय और विषयी अथवा माया और ब्रह्म ग्रंथि को ही जीव माना है।[28] वस्तुतः जब तक नाम रूप है, जब तक विस्मरण है, तभी तक जीव जगत की कल्पना है। जब स्वरूपावबोध होकर नामरूप का लोप हो जाएगा तब जीवादि की स्वतंत्र सत्ता का अनुभव नहीं होगा।[29]

स्वामी विवेकानंद की मोक्ष धारणा पूर्णतः अद्वैत वेदान्त के अनुरूप ही है। स्वामी जी के अनुसार मोक्ष न तो संस्कार्य है और न ही प्राप्य। कोई भी बहारी कार्य मोक्ष को कदापि प्रभावित नहीं कर सकता। स्वामी विवेकानंद जी के अनुसार भी परमावस्था वही है जिसे शंकराचार्य ने माना हैं। जहां–जहां ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान का, 'मैं' – 'तुम' का, एवं समस्त द्वैत का लोप हो, वही परमार्थ है।[30]

स्वामी विवेकानंद आचार्य शंकर के विचारों से इतने अधिक प्रभावित थे कि वह स्वयं को शंकर (शंकराचार्य) भी कहते थे।[31] उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते है कि स्वामी विवेकानंद ने ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, मोक्ष सम्बंधी विचारों का निर्माण आचार्य शंकर के विचारों से किया है और स्वामी विवेकानंद के दार्शनिक विचारों के निर्माण में प्रस्थानत्रयी ने आधार स्तम्भ की भूमिका निभाई जिस पर आगे चलकर स्वामी जी ने अपने व्यावहारिक वेदान्त का विशालकाय भवन तैयार किया। इस भवन की छत के नीचे आज भी विश्व समुदाय 'दरिद्र नारायण' के सिद्धान्त का पालन करते हुए समाज के गरीब, दबे कुचले, असहाय एवं रोगी व्यक्तियों की सहायता कर स्वामी विवेकानंद जी के द्वारा बताये गए व्यावहारिक वेदान्त के सपने को साकार करने में लगा।

सन्दर्भ सूची

1. विवकानंद साहित्य, षष्ठ खण्ड पृष्ठ 243
2. मुण्डकोपनिषद् 3.1.1
3. विवेकानंद साहित्य, दशम खंड़, पृष्ठ 28
4. विवेकानंद साहित्य, दशम खंड़, पृष्ठ 29
5. विवेकानंद साहित्य – पंचम खंड़ पृष्ठ 132
6. विवेकानंद साहित्य – पंचम खंड़ पृष्ठ 133–134
7. विवेकानंद साहित्य – पंचम खंड़ पृष्ठ 140
8. विवेकानंद साहित्य – प्रथम खंड़ पृष्ठ–3
9. विवेकानंद साहित्य – प्रथम खंड़ पृष्ठ–4
10. विवेकानंद साहित्य – प्रथम खंड़ पृष्ठ–4
11. विवेकानंद साहित्य, प्रथम खण्ड, पृष्ठ–10
12. भगवान् श्रीकृष्ण और भगवद्गीता, विवेकानंद पृष्ठ–45
13. –वही–
14. विवेकानंद साहित्य, पंचम खण्ड, पृष्ठ–142
15. विवेकानंद साहित्य, पंचम खण्ड पृष्ठ–315
16. विवेकानंद साहित्य, पंचम खण्ड पृष्ठ–350
17. विवेकानंद साहित्य, नवम् खण्ड, पृष्ठ–314
18. Complete Works of Swami Vivekananda, Vol-III, P421
19. Ibid. Vol - II, Page - 241
20. Ibid. Vol - III, Page - 241.4
21. Ibid. Vol - III, Page - 123.4
22. विवेकानंद साहित्य, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ–13
23. ब्रह्मसूत्र 1.1.2 ;जन्माद्यस्य यतःद्ध
24. विवेकानंद साहित्य, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ–9
25. Complete works of Swami Vivekanand, Vol-II, Page. 275-6
26. Thoughts or Vedanta, Page-9
27. Complete works of Swami Vivekanand, Vol-II, Page-112
28. Ibid. Vol-VIII, Page- 362
29. विवेकानंद जी के संग में, पृष्ठ 308
30. Complete works of Swami Vivekananda, Vol-III, Page-40
31. विवेकानंद क दार्शनिक चिंतन, डॉ0 भरत कुमार तिवारी, पृष्ठ 22 से उग्रत